United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

हिंदी कविता में गुरु-शिष्य परम्परा : विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ.नक्का हरी प्रसाद
हिंदी प्राध्यापक,पी.एस. शासकीय महाविद्यालय, पेनुकोंडा, श्री सत्यसाई जिला,आंध्र प्रदेश

सारांश:

भारतीय सांस्कृतिक चेतना में गुरु-शिष्य परम्परा ज्ञान, साधना और सामाजिक निर्माण की केंद्रीय प्रणाली रही है। हिंदी कविता में यह परम्परा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक अवधारणा नहीं बल्कि सामाजिक, नैतिक और शैक्षिक संरचना का सशक्त प्रतीक भी है। संत काव्य से लेकर आधुनिक कविता तक गुरु को ज्ञानदाता, शिष्य को साधक तथा उनके संबंध को जीवन-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत विस्तृत अध्ययन में हिंदी कविता के विभिन्न कालखंडों में गुरु-शिष्य परम्परा के काव्यात्मक, दार्शनिक, सांस्कृतिक और आलोचनात्मक पक्षों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द:
गुरु-शिष्य परम्परा, हिंदी कविता, संत साहित्य, तुलसीदास, कबीर, आधुनिक हिंदी काव्य, शिक्षा दर्शन

भूमिका :

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की प्राचीन और गौरवशाली शिक्षण व्यवस्था रही है। इस परंपरा में गुरु को ज्ञान, संस्कार और आध्यात्मिक मार्गदर्शन का स्रोत माना गया है। शिष्य गुरु के सान्निध्य में रहकर केवल विद्या ही नहीं बल्कि जीवन-मूल्य भी सीखता था। वैदिक और उपनिषद काल से ही यह परंपरा भारतीय समाज की आधारशिला रही है। 'उपनिषदों में ज्ञान को गुरु के निकट बैठकर प्राप्त करने की परम्परा का उल्लेख मिलता है।'[1] यही परम्परा आगे चलकर भक्ति आंदोलन में सामाजिक चेतना का माध्यम बनी और हिंदी कविता में सजीव रूप से व्यक्त हुई।

हिंदी साहित्य और कविता में गुरु-शिष्य संबंध को अत्यंत पवित्र और आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। संत कवियों ने गुरु को आत्मज्ञान और मोक्ष का मार्गदर्शक माना है। भक्ति आंदोलन के दौरान गुरु-शिष्य परंपरा ने सामाजिक समरसता को भी बढ़ावा दिया। इस संबंध में प्रेम, श्रद्धा और विश्वास का विशेष महत्व रहा है। गुरु शिष्य के दोषों को सुधारकर उसे श्रेष्ठ मनुष्य बनाने का प्रयास करता है। समय के साथ इस परंपरा का स्वरूप बदला, पर इसका मूल उद्देश्य वही रहा—ज्ञान और चरित्र निर्माण। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी गुरु-शिष्य संबंध का महत्व बना हुआ है। आज के युग में यह परंपरा मेंटरशिप और मार्गदर्शन के रूप में दिखाई

United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

देती है। इस प्रकार गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति, शिक्षा और साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

गुरु-शिष्य परम्परा का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक आधार:

वैदिक और उपनिषदकालीन दृष्टि:

भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य संबंध का मूल आधार आध्यात्मिक ज्ञान है। गुरु को ब्रह्मज्ञान का प्रतिनिधि माना गया। "आचार्य देवो भव" की अवधारणा इसी सम्मान का प्रतीक है।[2]

भक्ति आंदोलन और आध्यात्मिक लोकतंत्र

भक्ति काल में गुरु-शिष्य परम्परा का स्वरूप अधिक लोकतांत्रिक हुआ। जाति-भेद और सामाजिक सीमाओं को तोड़कर संत कवियों ने गुरु को सार्वभौमिक मार्गदर्शक बनाया।[3]

आधुनिककालीन दृष्टि:

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षक-विद्यार्थी संबंध अधिक संवादात्मक और सहभागी हो गया है, जहाँ शिष्य को स्वतंत्र चिंतन और प्रश्न करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। डिजिटल युग में ऑनलाइन शिक्षा, वेबिनार, वर्चुअल क्लास और मेंटरशिप कार्यक्रमों ने गुरु-शिष्य सम्बन्ध को वैश्विक स्वरूप प्रदान किया है। इसके साथ ही नैतिक शिक्षा, व्यक्तित्व विकास और करियर मार्गदर्शन में गुरु की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण बनी हुई है।

हिंदी कविता के कालखंडों में गुरु-शिष्य परम्परा:

आदिकाल में गुरु-शिष्य परम्परा:

हिंदी साहित्य के आदिकाल (लगभग 10वीं–14वीं शताब्दी) में गुरु-शिष्य परम्परा मुख्यतः धार्मिक, नैतिक और वीरतापरक शिक्षण से जुड़ी हुई थी। उस समय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य युद्धकौशल, धर्मपालन, शौर्य और सामाजिक मर्यादाओं का विकास करना था। गुरु केवल ज्ञानदाता नहीं बल्कि जीवन-आदर्श और आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित था, जबकि शिष्य को अनुशासन, निष्ठा और आज्ञापालन का प्रतीक माना जाता था। आदिकालीन साहित्य, विशेषतः वीरगाथा काव्य में, गुरु योद्धाओं को युद्धनीति, नीति-शास्त्र और धर्म का प्रशिक्षण देता हुआ दिखाई देता है।

प्रमुख उदाहरण

i. पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई) – इसमें पृथ्वीराज चौहान के प्रशिक्षण और युद्धनीति में गुरु एवं आचार्यों की भूमिका का संकेत मिलता है, जहाँ गुरु वीरता और धर्मपालन का मार्गदर्शन करता है।

ii. नाथपंथ और सिद्ध साहित्य – गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ जैसे गुरु-शिष्य संबंध आध्यात्मिक साधना और योग पर आधारित थे। गोरखनाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्य माना जाता है, जो आध्यात्मिक गुरु-परम्परा का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

iii. जैन और अपभ्रंश काव्य – जैन आचार्यों और उनके शिष्यों के संबंधों में नैतिक शिक्षा और धार्मिक अनुशासन पर जोर दिया गया, जैसे आचार्य हेमचन्द्र और उनके शिष्यों की परम्परा। आदिकाल में गुरु-शिष्य परम्परा का स्वरूप मुख्यतः धार्मिक, वीरतापरक और आध्यात्मिक था। गुरु को अनुकरणीय आदर्श माना गया और शिष्य को समाज एवं धर्म के रक्षक के रूप में

तैयार किया गया। इस काल की परम्परा ने आगे चलकर भक्तिकालीन गुरु-शिष्य संबंधों के लिए मजबूत आधार तैयार किया।

भक्तिकाल में गुरु-शिष्य परम्परा:

भक्तिकाल (लगभग 14वीं–17वीं शताब्दी) हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। इस काल में गुरु-शिष्य परम्परा का अत्यंत सशक्त और आध्यात्मिक स्वरूप विकसित हुआ। संत कवियों ने गुरु को केवल शिक्षक नहीं बल्कि आत्मज्ञान, भक्ति और मोक्ष का मार्गदर्शक माना। गुरु को ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम और शिष्य को साधक के रूप में चित्रित किया गया। इस काल में जाति-भेद, सामाजिक ऊँच-नीच और रूढ़ियों के विरुद्ध भी गुरु-शिष्य संबंध ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

i. कबीर और रामानंद – कबीरदास को स्वामी रामानंद का शिष्य माना जाता है। कबीर ने गुरु को आत्मज्ञान का सर्वोच्च स्रोत और आध्यात्मिक जागरण का केंद्र माना –

'गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट॥'[4] - इस रूपक में गुरु को शिल्पकार और शिष्य को निर्माणाधीन पात्र बताया गया है।

ii. तुलसीदास – तुलसीदास कृत *रामचरितमानस* में प्रचलित पंक्ति इस प्रकार उद्धृत की जाती है -

"गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जो बिरंचि संकर सम होई॥"[5] - गुरु के बिना संसार रूपी समुद्र को कोई पार नहीं कर सकता, चाहे वह ब्रह्मा (बिरंचि) या शिव (शंकर) के समान ही महान क्यों न हो।

"श्रीगुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि..." (*रामचरितमानस*, बालकाण्ड मंगलाचरण) - गुरु के चरणों की धूल से अपने मन रूपी दर्पण को शुद्ध करके तुलसीदास रामकथा का वर्णन करते हैं।

iii. सूरदास और वैष्णव संत – सूरदास ने भक्ति में गुरु की भूमिका को प्रेम और समर्पण के माध्यम से प्रस्तुत किया। गुरु शिष्य को ईश्वर-प्रेम की अनुभूति कराता है।[6] सूरदास स्वयं वल्लभाचार्य के शिष्य थे, इसलिए उनकी रचनाओं में गुरु की महत्ता, कृपा और मार्गदर्शन की भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग में गुरु की कृपा को विशेष महत्व दिया गया है। सूरदास की अवधारणा में भी गुरु की कृपा से ही शिष्य को भगवान की अनुकम्पा प्राप्त होती है। गुरु-महिमा और गुरु-कृपा से सम्बन्धित भाव उनके पदों और वैष्णव परम्परा में दिखाई देते हैं।

"गुरु प्रसाद होत यह ज्ञान।
बिनु गुरु कौन बतावै पंथ, मिटै न मन अभिमान॥" - गुरु की कृपा से ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु के बिना सही मार्ग का ज्ञान नहीं मिलता और मन का अहंकार समाप्त नहीं होता।

"श्रीवल्लभ गुरु कृपा बिनु, नाहीं मिलै गोपाल।
सूर कहै, गुरुदेव बिनु, अँधियारो सब भाल॥" - वल्लभाचार्य गुरु की कृपा के बिना भगवान कृष्ण की प्राप्ति नहीं होती। सूरदास कहते हैं कि गुरु के बिना जीवन अज्ञान के अंधकार में डूबा रहता है।

United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

iv. मीराबाई – मीराबाई ने संत रैदास (रविदास) को गुरु रूप में स्वीकार किया था। उनके पदों में "गुरु मिल्या रैदास, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी..." जैसे उल्लेख मिलते हैं, जो गुरु की कृपा और मार्गदर्शन की स्वीकृति दर्शाते हैं।

रीतिकाल में गुरु-शिष्य परम्परा:

रीतिकालीन कवियों में गुरु-शिष्य संबंध मुख्यतः साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा से जुड़ा रहा। आचार्य अपने शिष्यों को अलंकार, रस और काव्यशास्त्र की शिक्षा देते थे। रीतिकालीन गुरु-शिष्य परम्परा में आध्यात्मिकता की अपेक्षा कला-कौशल और विद्वत्ता को अधिक महत्व दिया गया, फिर भी गुरु के प्रति सम्मान और अनुशासन की भावना बनी रही। शिष्य अपने आचार्य को काव्य-विद्या का स्रोत मानते थे और उनकी शैली का अनुकरण करते थे। इस प्रकार रीतिकाल में गुरु-शिष्य संबंध साहित्यिक परम्परा के संरक्षण और विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बन गया, जिसने हिंदी काव्य को शास्त्रीयता, सौन्दर्यबोध और तकनीकी परिपक्वता प्रदान की।

आधुनिक काल में गुरु-शिष्य परम्परा:

आधुनिक कवियों ने गुरु को राष्ट्रनिर्माता और समाज सुधारक के रूप में चित्रित किया। शिक्षा को स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन का साधन माना गया।[7] हिंदी साहित्य के आधुनिक काल (उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से वर्तमान तक) में गुरु-शिष्य परम्परा का स्वरूप पारम्परिक आश्रम-व्यवस्था से बदलकर शैक्षिक, वैचारिक और साहित्यिक मार्गदर्शन पर आधारित हो गया। इस काल में विश्वविद्यालयों, साहित्यिक संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यिक आंदोलनों ने गुरु-शिष्य संबंध को नया रूप दिया। गुरु अब केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शक नहीं रहे, बल्कि साहित्यिक प्रेरक, आलोचक और मार्गदर्शक के रूप में उभरे। कई आधुनिक लेखकों और विचारकों ने गुरु की भूमिका को नए संदर्भों में प्रस्तुत किया है।

"गुरु वह है जो शिष्य के भीतर छिपी हुई संभावनाओं को पहचानकर उसे स्वयं अपने मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे।"[8]

"सच्चा शिक्षक वही है जो ज्ञान के साथ संवेदना भी प्रदान करे, क्योंकि शिक्षा केवल जानकारी नहीं, जीवन का संस्कार है।"[9]

"शिक्षक का काम केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि शिष्य में आत्मविश्वास और राष्ट्रबोध जगाना भी है।"[10]

"साहित्य में गुरु वही है जो प्रश्न पूछना सिखाए, न कि केवल उत्तर देना।"[11]

"गुरु-शिष्य संबंध ज्ञान के आदान-प्रदान से अधिक विचारों की स्वतंत्रता और आलोचनात्मक दृष्टि का संबंध है।"[12]

आधुनिक हिंदी साहित्य में गुरु-शिष्य संबंध आध्यात्मिकता से आगे बढ़कर बौद्धिक मार्गदर्शन, शिक्षा और साहित्यिक प्रेरणा के रूप में सामने आया।

i. भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनकी साहित्यिक मंडली

आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनेक युवा लेखकों को प्रेरित किया। उन्होंने साहित्यिक सभाओं और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नए लेखकों को दिशा दी। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि भारतेंदु की साहित्यिक परम्परा से प्रभावित थे।

भारतेंदु ने हिंदी भाषा और आधुनिक विषयों की ओर शिष्यों को प्रेरित किया। यहाँ गुरु-शिष्य संबंध साहित्यिक नेतृत्व और मार्गदर्शन के रूप में विकसित हुआ।

ii. महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' युग

द्विवेदीजी आधुनिक काल के प्रमुख साहित्यिक गुरु माने जाते हैं। उन्होंने पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक कवियों और लेखकों को प्रशिक्षित किया। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि द्विवेदीजी से प्रभावित थे। द्विवेदीजी ने भाषा-शुद्धि, राष्ट्रवाद और नैतिकता की शिक्षा देकर एक पूरी पीढ़ी को तैयार किया।

iii. जयशंकर प्रसाद और छायावादी परम्परा

छायावाद में गुरु-शिष्य संबंध वैचारिक प्रेरणा और काव्य-दृष्टि के स्तर पर दिखाई देता है। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा एक-दूसरे के साहित्यिक सहयोगी और प्रेरक थे। महादेवी वर्मा ने भी कई युवा कवियों को मार्गदर्शन दिया। यहाँ गुरु-शिष्य संबंध पारस्परिक प्रेरणा और साहित्यिक संवाद के रूप में प्रकट हुआ।

iv. रामविलास शर्मा और आधुनिक आलोचना परम्परा

आधुनिक हिंदी आलोचना में रामविलास शर्मा जैसे विद्वानों ने शोधार्थियों और युवा लेखकों को मार्गदर्शन दिया। विश्वविद्यालयों में उनके शिष्य आलोचना और साहित्य-अध्ययन की नई दिशा लेकर आए। मार्क्सवादी दृष्टिकोण और ऐतिहासिक आलोचना की परम्परा विकसित हुई।

v. विश्वविद्यालयीय और अकादमिक परम्परा

आधुनिक काल में गुरु-शिष्य संबंध का प्रमुख माध्यम विश्वविद्यालय बन गए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्यों में नामवर सिंह जैसे प्रमुख आलोचक रहे। नामवर सिंह जी ने नई पीढ़ी के साहित्यकारों और शोधार्थियों के गुरु के रूप में प्रसिद्ध हुए। यहाँ गुरु-शिष्य संबंध औपचारिक शिक्षा, शोध-निर्देशन और बौद्धिक संवाद पर आधारित है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में गुरु-शिष्य परम्परा पारम्परिक धार्मिक ढाँचे से निकलकर साहित्यिक, वैचारिक और अकादमिक संबंध में परिवर्तित हो गई। भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा जैसे आचार्यों ने नई पीढ़ी के साहित्यकारों को दिशा देकर इस परम्परा को आधुनिक संदर्भों में जीवित रखा।

निष्कर्ष:

हिंदी कविता में गुरु-शिष्य परम्परा एक बहुआयामी सांस्कृतिक परिघटना है। भक्तिकाल में इसका आध्यात्मिक उत्कर्ष हुआ, रीतिकाल में साहित्यिक रूप विकसित हुआ और आधुनिक काल में सामाजिक एवं शैक्षिक अर्थों में इसका पुनर्परिभाषण हुआ। हिंदी कविता ने गुरु-शिष्य संबंध को ज्ञान, प्रेम, अनुशासन और सामाजिक परिवर्तन का प्रतीक बनाया है।

संदर्भ सूची:

हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ. 54
एस. राधाकृष्णन, दि प्रिंसिपल उपनिषद्स. हार्पर कॉलिन्स, 1994, पृ. 112
शोमर, करिन एवं मैकलियोड, डब्ल्यू. एच., द सेंट्स : स्टडीज़ इन अ डिवोशनल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया. मोतीलाल बनारसीदास, 1987, पृ. 33
कबीर. कबीर ग्रंथावली. संपा. श्यामसुंदर दास. नागरी प्रचारिणी सभा, 1928, पृ. 214
तुलसीदास. रामचरितमानस. गीता प्रेस संस्करण, बालकाण्ड, पृ. 25
हौले, जॉन स्ट्रैटन. सूरदास : कवि, गायक, संत (Sur Das: Poet, Singer, Saint). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984, पृ. 66
रामविलास शर्मा, हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ. 201
हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, 1993, पृ. 82
महादेवी वर्मा. श्रृंखला की कड़ियाँ, वाणी प्रकाशन, 2001, पृ. 43
दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय, वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 201
नामवर सिंह. वाद-विवाद-संवाद, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ. 156
रामविलास शर्मा, हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, 1998, पृ. 156